अगस्त १९९८ हिंदी पत्रिका में प्रकाशित

धारण करे तो धर्म

आधार शील-सदाचार का

(जी-टीवी पर क्रमशः चौवालीस कड़ियों में प्रसारित पूज्य गुरुजी के प्रवचनों की **तीसरी कड़ी**)

चित्त को शुद्ध करने वाली इस विधि को सीखने के लिए हमें किसी विपश्यना की तपोभूमि में प्रवेश पाना आवश्यक होता है। यह विद्या अनुकूल वातावरण में ही सीखी जा सकती है। लिखना-पढ़ना सीखना हो तो किसी पाठशाला में भर्ती होना ही होता है। शरीर को स्वस्थ सबल रखने के लिए किसी व्यायामशाला में जाना होता है, किसी योगाश्रम में जाकर के प्राणायाम, आसन इत्यादि सीखने होते हैं। ठीक वैसे ही चित्त को निर्मल करने वाली यह विपश्यना विद्या सीखने के लिए किसी विपश्यना की तपोभूमि में जाना होता है। किसी पाठशाला में रात-दिन रहने की आवश्यकता नहीं। किसी व्यायामशाला में, किसी योग के आश्रम में रात-दिन रहने की आवश्यकता नहीं। विद्या सीख ली, घर में आकर उसका अभ्यास करते रहे तो काम चल जाता है। परंतु विपश्यना एक ऐसी विद्या है जिसे सीखने के लिए कम से कम एक बार आरंभ में दस दिनों के लिए उस तपोभूमि में ही रहना होता है।

मन को केवल एकाग्र करने की कोई साधना करनी हो तो किसी मंत्र का आलंबन मिल गया, किसी मूरत का आलंबन मिल गया या किसी अन्य प्रकार का आलंबन मिल गया और किसी गुरु के पास सीख करके घर में उसका अभ्यास करते रहे। ऐसा होता है, हो सकता है। लेकिन विपश्यना केवल चित्त के ऊपरी-ऊपरी हिस्से को विकार-विमुक्त करने की साधना नहीं है। इसमें मन का बहुत गहरा सर्जिकल आपरेशन होता है। अंतर्मन की गहराइयों तक हमने जो विकार अनेक जन्मों से इकट्ठे कर रखे हैं, कोई अनेक जन्म को न माने तो इस जन्म में भी कम विकार एकत्र नहीं किये। और फिर अंतर्मन की गहराइयों में हमारा मानस एक स्वभाव-शिकंजे का बंदी हो गया, एक स्वभाव-शिकंजे में गिरफ्त हो गया। उस गिरफ्तारी से उसे मुक्त करना है। उसका स्वभाव पलटना है। तो उन गहराइयों तक जाने के लिए मन का आपरेशन होना बहुत आवश्यक है।

हम शरीर से रोगी हो जायँ तो किसी ऐसी अस्पताल में जाना होता है जो बहुत स्वच्छ हो, स्वास्थ्यप्रद हो। अगर शरीर के किसी अंग का ऑपरेशन करवाना है तो ऐसे ऑपरेशन थियेटर में जाना होता है जो बिल्कुल निरापद हो, स्वच्छ हो। यह तो मन का ऑपरेशन है। तो ऐसे वातावरण में ही इसे सीख सकते हैं जहां किसी प्रकार का प्रदूषण न हो। प्रदूषण एक तो भौतिक होता है, उससे भी बचना है। एक और बड़ा प्रदूषण मन के इन विकारों का प्रदूषण है।

ये विपश्यना की तपोभूमियां प्राचीन काल में भी थीं और अब भी हैं। इनके वातावरण को बहुत शुद्ध रखा जाता है। वहां खूब हरियाली हो। किसी तरह का भौतिक प्रदूषण न हो। शांति हो, नीरवता हो, ध्यान के अनुकूल वातावरण हो। फिर इस तपोवन में सिवाय विपश्यना के अन्य किसी प्रकार की प्रवृत्ति न हो। केवल विपश्यना का काम करते-करते शुद्ध धर्म की तरंगों से सारी तपोभूमि तरंगित हो उठती है। बड़ा अनुकूल स्थान होता है जहां पहले-पहल ऑपरेशन करने के लिए जाना होता है। दूसरी बात वहां ऐसा कोई अनुभवी, अधिकारी व्यक्ति मिलता है जो इस ऑपरेशन में, यह विद्या सिखाने में सहायक होता है। अपने आप इसे करने लगें, यह उचित नहीं मानते।

साधना की विधि तो बड़ी सरल है। इसमें किसी प्रकार की कोई उलझन, कांप्लीकेशन नहीं है। कोई सुन कर भी आरंभ कर सकता है। पर चेतावनी दिया चाहते हैं कि यों सुन कर या पढ़ कर और किसी प्रकार की साधना भले कर लें पर विपश्यना साधना न करें। बड़ा गंभीर काम है, बड़ा नाजुक काम है। कम से कम एक बार दस दिनों के लिए किसी अनुकूल वातावरण में रहते हुए किसी जानकार अनुभवी, अधिकारी व्यक्ति के मार्गदर्शन में यह विद्या सीखनी चाहिए। इसके बाद हर व्यक्ति अपना मालिक है। घर में इतनी निरंतरता से अभ्यास हो पाना संभव नहीं होता। अतः घर में इतना गहरा ऑपरेशन होने वाला नहीं है। एक बार सीखने के बाद घर में सुबह-शाम ध्यान कर सकते हैं। जब कभी जरूरत हो कि अब और गहरा ऑपरेशन करना है, तब फिर तपोभूमि चले जायँ। लेकिन पहली बार काम शुरू करने के लिए किसी तपोभूमि में जा करके ही यह विद्या सीखनी चाहिए। तभी बहुत निरापद अभ्यास होगा।

तपोभूमि में जा कर ही सीखने का एक और भी कारण है। सारी विद्या शुद्ध चित्त के आचरण में प्रतिष्ठित हो जाने की विद्या है। अतः काम इस प्रकार आरंभ करेंगे कि दस दिनों तक जब यह विद्या सीख रहे हैं तब अपने शीलों को खूब पुष्ट रखेंगे। किसी तरह से शील टूटने न पाये। वहां रहते हुए किसी की हत्या नहीं करेंगे। चोरी नहीं करेंगे। व्यभिचार नहीं करेंगे, बल्कि दस दिनों तक ब्रह्मचर्य का ही पालन करेंगे। झूठ नहीं बोलेंगे। किसी भी प्रकार के मादक पदार्थ का सेवन नहीं करेंगे।

एक ओर तो हमने यह समझा कि शील-सदाचार को जीवन में उतारने के लिए अपने मन को वश में करना होता है। मन ही वश में नहीं होगा तो हम शीलवान कैसे बनेंगे? हम सदाचारी कैसे बनेंगे? दूसरी ओर इस विद्या के लिए आवश्यक है कि मन को वश में करने का जो काम शुरू करो, उसका आधार शील-सदाचार का होना चाहिए। माने शील-सदाचार का जीवन जीते हुए ही यह विद्या सीख सकोगे। तो बड़ी कठिनाई पैदा हुई। शील-सदाचार का जीवन जीने के लिए मन को वश में करना होगा। मन को निर्मल करना होगा। मन को वश में करने के लिए, मन को निर्मल करने के लिए शील-सदाचार का पालन करना होगा। तो कठिनाई हो गयी? आगे घोड़ा रखें कि आगे गाड़ी रखें? पहले शील-सदाचार का पालन हो कि पहले चित्त की एकाग्रता और निर्मलता का काम हो? कौन-सा

काम पहले हो?

इस समस्या के समाधान के लिए ही हमारे देश के सद्गुरुओं ने यह परंपरा स्थापित की कि किसी तपोभूमि में जाकर यह विद्या सीखो। वहां जाते ही ये पांचों शील याने शरीर से, वाणी से कोई ऐसा काम नहीं करेंगे जिससे अन्य प्राणियों की सुख-शांति भंग होती हो। अन्य प्राणियों का अहित होता हो, उनका अमंगल होता हो। ऐसा कोई काम कर ही नहीं सकेंगे। क्योंकि तपोभूमि का वातावरण ही ऐसा है। वहां कि सकी हत्या करने जाएंगे? कहां चोरी करने जाएंगे? कहां व्यभिचार करने जाएंगे? कहां नशा-पता करेंगे? झूठ न बोल जाय, इसके लिए भी तपोभूमि का अपना एक और नियम होता है कि जब तक ऑपरेशन चल रहा है तब तक मौन रहेंगे। आपस में बात नहीं करेंगे। अपने आचार्य से, मार्गदर्शक से भले बात करें। सो भी इस विद्या के बारे में बात करें। कोई बात नहीं समझ में आयी कि कैसे काम करना है, तो बात करें। लेकिन उनसे बात करते हुए भी सजग रहेंगे। जैसे प्रश्न पूछा गया कि "तुम्हें कैसे अनुभव हो रहा है? क्या कर रहे हो?" तो उसका उत्तर देते हुए बहुत सजग रहेंगे। झूठ नहीं बोलेंगे। किसी बात को बढ़ा-चढ़ा कर नहीं बोल देंगे। किसी बात को छिपा करके नहीं बोल देंगे। इस तरह से यह 'झूठ न बोलने का' शील भी उस वातावरण में आसानी से पालन किया जा सकेगा। फिर वहां इतना व्यस्त रहता है साधक ;इतनी व्यस्त रहती है साधिका कि सुबह चार, साढ़े चार बजे से रात के नौ, साढ़े नौ बजे तक ;यही काम करना है। तो कहां शील-सदाचार भंग होगा?

तो शील का यह आधार बना। अब इसके बाद वहां काम करना शुरू करे। जैसे-जैसे बताया जाय, वैसे-वैसे काम करता चला जाय तो देखेगा कि काम बहुत ठीक ढंग से हो रहा है। लेकिन शील का आधार नहीं हो तो काम आगे नहीं बढ़ता। भगवान बुद्ध के समय भी भगवान महावीर को छोड़ करके क़ई ऐसे आचार्य थे, और आज भी ऐसे आचार्य हैं जो अपने साधकों से कहते हैं कि अरे, क्या पड़ा है शील-सदाचार में? तुम्हारे मन में जो आये सो करो ना? खूब मौज-मजा करो, खूब काम-भोग में लिप्त रहो। जो करना है सो करो। फिर भी देखो – ऐसा ध्यान सिखाएंगे, ऐसा ध्यान सिखाएंगे! उसमें ऐसा आनंद आयेगा, ऐसा आनंद आयेगा आदि। ऐसे लोगों के यहां बड़ी भीड़ लगती थी। आदमियों को छूट चाहिए ना? सदाचार की छूट मिल जाय और फिर भी आनंद आये तो और क्या चाहिए?

विपश्यना में यह नहीं चलता। आधार शील-सदाचार का होना अत्यंत अनिवार्य है। क्यों अनिवार्य है? इसे भी समझें। आखिर मन का ऑपरेशन करना है। केवल ऊपरी-ऊपरी मन में किसी प्रकार का आनंद भर देना, विपश्यना का लक्ष्य नहीं है। बहुत गहराइयों तक, मानस की तलस्पर्शी गहराइयों तक जहां विकारों का उद्गम होता है, जहां विकारों का संचय होता है, वहां तक पहुँचना है। गहरा ऑपरेशन है। अगर हमारा मानस, ऊपर-ऊपर का मानस बहुत व्यथित होगा, बहुत विचलित होगा, बड़ी ऊंची-ऊंची तरंगें होंगी उसमें, तो गहराइयों में जाना मुश्किल हो जाएगा।

जैसे हमें समुद्र-तल के नीचे कोई तेल के कूंए का भंडार खोजना है कि तेल का संग्रह कहां है? बहुत आवश्यक खोज है पर मानसून आ गया। अब यह सारी खोज बंद। क्यों बंद हो गयी? क्योंकि समुद्र के ऊपर इतनी ऊंची-ऊंची उत्ताल तरंगें चल रही हैं कि अब उन गहराइयों में जा करके खोज का काम नहीं हो सकता। मानसून खत्म हुई, वर्षाकाल खत्म हुआ, फिर खोज शुरू हो जाती है। वर्षाकाल समाप्त हो गया तो वे ऊंची-ऊंची उत्ताल तरंगें आनी बंद हो गयीं। लेकिन तरंगें तो अभी भी हैं। ऐसे ही मानस में विकारों की तरंगें तो रहेंगी ही। लेकिन जिस समय हम किसी भी शील-सदाचार को तोड़ेंगे – हत्या करें, कि चोरी करें, कि व्यभिचार करें, कि झूठ बोलें, कि नशा-पता करें तो इतनी ऊंची-ऊंची तरंगें हमारे ऊपरी-ऊपरी मानस पर आने लगेंगी कि गहराइयों में जा ही नहीं सकेंगे। गहराइयों तक जाने का काम करना है तो एक बार अपने मानस की ऐसी स्थिति बनानी ही होगी कि जहां विकार तो हैं पर उतनी उत्ताल तरंगों वाले विकार नहीं हैं। और अब काम शुरू कर देंगे।

तपोभूमि का सारा वातावरण ही ऐसा है। वहां के नियम-उपनियम, वहां का शासन-अनुशासन, वहां की समय-सारिणी, सबका बड़ी कड़ाई से पालन करना होता है। खूब अनुशासन के साथ काम करेंगे तो काम ठीक होगा। कोई मौज-मजे के लिए नहीं जा रहे, कोई पिकनिक के लिए नहीं जा रहे। तपने के लिए जा रहे हैं। बहुत गंभीर तपस्या करके अपने मानस के विकारों को बाहर निकालना है। तो बड़ी गंभीरता के साथ काम करना पड़ेगा। निरंतरता के साथ काम करना पड़ेगा। इसलिए उन सारे नियमों को समझ करके मानते हुए, उनका पालन करते हुए काम करेंगे।

क्या काम करेंगे? काम शुरू करते ही अपने पहले मन को एकाग्र करने की विद्या सीखेंगे। मन को एकाग्र करने के लिए किसी न किसी आलंबन का, किसी न किसी आधार का सहारा लेना होता है। अनेक आलंबन हैं, जिनके सहारे हम अपने मन को एकाग्र करने का अभ्यास कर सकते हैं। विपश्यना की खोज करने वाले इस महान सम्यक संबुद्ध ने हमें एक ऐसा आलंबन दिया जो सदा हमारे साथ रहता है। जबसे जन्मे हैं और जब तक मृत्यु को प्राप्त नहीं हो जाएंगे, तब तक यह आलंबन हमारे साथ है। हमारा यह अपना सांस जबसे जन्मे हैं और जब तक मृत्यु को प्राप्त नहीं हो जाएंगे, तब तक आता ही रहता है, जाता ही रहता है। सोते-जागते, उठते-बैठते, चलते-फिरते, खाते-पीते, हर अवस्था में सांस आ रहा है, सांस जा रहा है। सांस आ रहा है, सांस जा रहा है। बस इसी को आलंबन बना लिया। सहज स्वाभाविक सांस, जैसे भी आ रहा है, जैसे भी जा रहा है; उसे केवल जानना है और कुछ नहीं करना। कहीं सांस की कसरत न करने लगें। सांस पर किसी तरह का नियंत्रण न करने लगें। सहज स्वाभाविक सांस। गहरा है तो जान लिया गहरा है, छिछला है तो जान लिया छिछला है। बांयी नासिका से गुजरता है तो बायीं नासिका से गुजरता है। दाहिनी से गुजरता है तो दाहिनी से गुजरता है और दोनों से गुजरता है तो दोनों से गुजरता है।

हमारा काम तो केवल जानना है। सांस की कसरत नहीं, उस

पर कोई नियंत्रण नहीं। प्राणायाम बिल्कुल नहीं। प्राणायाम के अपने लाभ होते हैं। लेकिन वह बिल्कुल भिन्न मार्ग है। उसका विपश्यना से कोई लेनदेन नहीं। यहां तो क्षण-प्रतिक्षण जो सच्चाई अपने बारे में प्रकट हो रही है, बस, उसे द्रष्टा भाव से, साक्षीभाव से, तटस्थभाव से जानना है। यह विद्या मात्र जानने की है, सांस की कसरत की नहीं। सांस तो स्वभावतः आता है। जैसा भी आये। अपने मन को नासिका के द्वारों पर, नासिका के भीतर, नासिका की नलियों तक इतनी-सी दूरी में सीमित रखते हुए, सांस के आवागमन को जान रहे हैं। आ रहा है, जा रहा है। आ रहा है, जा रहा है। उस पर किसी तरह का नियंत्रण नहीं। उसमें कोई फेरफार करने की जरूरत नहीं। बांयी नासिका से आ रहा है तो उसे दाहिनी ओर ले जाने की जरूरत नहीं। दाहिनी से आ रहा है तो बायीं ओर ले जाने की जरूरत नहीं। गहरा है तो छिछला करने की जरूरत नहीं। छिछला है तो गहरा करने की जरूरत नहीं।

सांस जैसा भी है, **यथाभूत ञाणदस्सनं** – उसका दर्शन ज्ञानपूर्वक कर रहे हैं। सांस आ रहा है, सांस जा रहा है। बांयी नासिका में से गुजर रहा है, कि दाहिनी नासिका में से गुजर रहा है, कि दोनों नासिकाओं में से गुजर रहा है। बस, उसके आवागमन के प्रति हम बहुत सजग हैं। तटस्थभाव से जान रहे हैं। क्या तटस्थभाव होता है? नदी के तट पर बैठे हैं, नदी बह रही है। उस नदी के बहाव में हमारा कोई हाथ नहीं। न हम उसे तेज करते हैं, न हम उसे आहिस्ता करते हैं। नदी का पानी मैला है तो मैला है, स्वच्छ है तो स्वच्छ है। नदी पर ऊंची-ऊंची तरंगें हैं तो ऊंची-ऊंची तरंगें हैं। बिना तरंग वाला है तो बिना तरंग वाला पानी है। तट पर बैठा हुआ आदमी केवल देखता है। यह नदी का प्रवाह है, चल रहा है। कर्ताभाव बिल्कुल नहीं। केवल द्रष्टाभाव, साक्षीभाव रखता है। वैसे ही सांस के आवागमन में भी कर्ताभाव बिल्कुल नहीं। मात्र साक्षीभाव, द्रष्टाभाव, तटस्थभाव से बस एक स्थान पर मन को लगा करके केवल जान रहे हैं। और कुछ नहीं करना है।

सांस आ रहा है, जान रहे हैं। जा रहा है, जान रहे हैं। बड़ा सरल काम है ना? कुछ करना ही नहीं है। कोई कसरत नहीं। केवल जानना है। इससे सरल काम और क्या होगा? लेकिन जब कभी दस दिन समय निकाल कर आओगे तो देखोगे, बड़ा कठिन काम है। बड़ा कठिन काम है। अरे, दो सांस भी नहीं देख पाओगे कि मन वह भागा। दो सांस भी नहीं देख पाओगे कि मन वह भागा। बार-बार मन भागेगा, बार-बार उसे सांस पर लाओगे। एक चिड़चिड़ाहट उठने लगती है कभी-कभी साधक को कि अरे, कैसा मन लिये चल रहा हूं? इतना सरल-सा काम कि जहां करना-करानाकुछ नहीं। नदी के तट पर बैठ करके ,नदी के प्रवाह को देखना है। ऐसे ही सांस के प्रवाह को देखने के लिए मन को यहां लगा दिया। बस, सांस के प्रवाह को देख रहे हैं। इसमें कोई मेहनत नहीं, कोई कसरत नहीं। इतना-सा काम भी नहीं कर सकते? तो झुंझलाहट आयेगी अपने मन पर।

तो मार्गदर्शक कहेगा, अरे! नहीं, नहीं, अपने आप पर भी क्रोध नहीं करना। अपने मन पर भी क्रोध नहीं। अरे, क्रोध तो क्रोध है भाई! झुंझलाहट तो झुंझुलाहट है। बहुत व्याकुलबना देगी। उसके स्वभाव से मुक्त होने के लिए तो आये हो। स्वीकार करो। इस समय मेरा मन भटक गया। बस, स्वीकार करो और फिर काम में लग जाओ। फिर सांस पर मन आ गया। फिर भटक गया। होश आते ही फिर लग गये। अरे, फिर भटक गया! फिर आ जाओ। बस, यों करते-करते एक दिन, दो दिन, तीन दिन में परिणाम आने शुरू हो जाएंगे।

काम करना पड़ेगा। शुद्ध धर्म के रास्ते चलना है तो बड़ी मेहनत करनी पड़ती है, बड़ा परिश्रम करना पड़ता है, बड़ा पुरुषार्थ करना पड़ता है। किसी की कृपा से नहीं होता। कृपा यही कि चलने वाला उस रास्ते पर चला है तो बता देगा कि ऐसे कर भाई, इस तरह चल इस मार्ग पर। चलना तो खुद ही पड़ेगा। और चलेगा तो देखेगा अरे, मंगल ही मंगल है इस मार्ग में। कल्याण ही कल्याण भरा हुआ है इस मार्ग में। शांति और सुख भरा हुआ है इस मार्ग में। चलते-चलते विकारों से जैसे-जैसे मुक्त होते चले जाएंगे, वैसे-वैसे मंगल ही मंगल जागेगा, कल्याण ही कल्याण जागेगा। शुद्ध धर्म के रास्ते जो चले, उसी का खूब मंगल होता है, खूब कल्याण होता है। बड़ी स्वस्ति मुक्ति होती है, स्वस्ति-मुक्ति होती है।